Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July-December 2023 4(2), 1616–1622

ART, SKILL AND KNOWLEDGE: PEDAGOGICAL ANALYSIS OF INDIAN KNOWLEDGE TRADITION

कला, कौशल और ज्ञान: भारतीय ज्ञान परंपरा का शिक्षणशास्त्रीय विवेचन

Virender Kumar Chandoria [1], Pooja Singh [2], Praveen Kumar Surjan [3], Sumit Kumar Singh Chauhan [4]

[1] Assistant Professor, Department of Education, Allahabad University (Central University), Prayagraj, Uttar Pradesh, India
[2] Assistant Professor, College of Teacher Education, Nuh, Haryana, Department of Education and Training, Maulana Azad National Urdu University (Central University), Telangana, India
[3] Assistant Professor, Department of Education and Training, Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad
[4] Student, Department of Education Allahabad University (Central University), Prayagraj, Uttar Pradesh, India

ABSTRACT

English: Indian knowledge tradition is an oldest knowledge tradition. In the context of the current urge to adopt the Indian knowledge tradition, a question arises that what are the concepts related to education and teaching learning process in the Indian knowledge tradition and how have they changed and been enhanced with time? Another important question is, How was education planned and organised in Indian ancient tradition? This question has also been a major theme of curiosity for many centuries. This question becomes more necessary because we are very much inclined towards a western colonial education system, so the question is how far is the Indian tradition different from the western concepts prevalent in current education? The lack of scholarly material in this field is an acceptable truth. On studying the traditions of different societies, an important fact emerges that all societies have been developing their own traditions of learning and teaching learning practices in their course of development. Not only this, these traditions have also discovered ways of transmitting knowledge to the learner. It is also well known that no tradition is stable and permanent. It changes with time. What has been the form of learning and teaching in the Indian tradition and how have they changed with time? What kind of changes have come in the concept of the teacher and how have the concepts changed along with these changes? And what kind of pressures have dominated these changes? Along with this, an attempt has been made to understand the clear epistemological difference between knowledge, learning and skill at the center of all these. All the above issues have been documented in the context of pedagogy, which have been included in this article.

Hindi: भारतीय ज्ञान परंपरा एक प्राचीन परंपरा रहीं है। वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनाने के आग्रह के संदर्भ में एक सवाल शास्वत हो उठता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा और शिक्षण से जुड़ी कौन-कौन सी अवधारणाएं रही हैं और वे समय के साथ कैसे परिवर्तित और संवर्धित होती रही हैं ? एक और महत्वपूर्ण सवाल यह है कि हमारी प्राचीन परंपरा में शिक्षा का नियोजन किस प्रकार किया जाता था? कई सदियों से यह प्रश्न जिज्ञासा का एक बड़ा विषय भी रहा है। यह प्रश्न इसलिए भी ज्यादा लाज़मी बन जाते है क्योंकि हम एक पश्चिमी उपनिवेशिक शिक्षा पद्यति का अनुसरण कर रहें है इसलिए यह सवाल कि वर्तमान शिक्षा में प्रचलित पश्चिमी अवधारणाओं से भारतीय परंपरा कहां तक अलग हैं? इस क्षेत्र में सुस्पष्ट सामग्री का अभाव भी सुविदित ही है। विभिन्न समाजों की परंपराओं का अध्ययन करने पर एक महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आता है कि सभी समाज विकास के अपने क्रम में सीखने-सिखाने की अपनी परंपराएं विकसित करते आये हैं। इतना ही नहीं इन परम्पराओं ने शिक्षार्थी को ज्ञान संप्रेषित करने के तरीके भी खोजे हैं। यह भी सर्वविदित है कि कोई भी परंपरा स्थिर और स्थायी नहीं होती है। समय के साथ उसमें बदलाव आते हैं। भारतीय परंपरा में सीखने-सिखाने का क्या स्वरूप रहा है और समय के साथ वे भी कैसे बदली हैं? शिक्षक की अवधारणा में किस तरह के बदलाव आए हैं और इन बदलावों के साथ साथ अवधारणा कैसे बदली हैं? और इन बदलावों में किस तरह के दवाब हावी रहे हैं? साथ ही इन सभी के केंद्र में ज्ञान, विद्या और कौशल के बीच स्पष्ट ज्ञानमीमांसीय अन्तर को समझने का प्रयास के साथ उपर्युक्त सभी मुद्दों का शिक्षणशास्त्र के संदर्भ में दस्तावेजी अध्ययन किया गया है, जिन्हें इस आलेख में शामिल किया गया है।

Keywords: Indian Knowledge Tradition, Pedagogy, Knowledge, Learning, Tradition, Skill, Art, भारतीय ज्ञान परंपरा, शिक्षणशास्त्र, ज्ञान, विद्या, कौशल, कला

Corresponding Author

Virendra Kumar Chandoria,
chandoriakr@gmail.com

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i2.2023.2719

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा एक प्राचीन चिंतन परंपरा है। वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनाने के आग्रह के संदर्भ में एक सवाल शास्वत हो उठता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा और शिक्षण से जुड़ी कौन-कौन सी अवधारणाएं रही हैं और वे समय के साथ कैसे परिवर्तित और संवर्धित होती रही हैं ? एक और महत्वपूर्ण सवाल यह है कि हमारी प्राचीन परंपरा में शिक्षा का नियोजन किस प्रकार किया जाता था? कई सदियों से यह प्रश्न जिज्ञासा का एक बड़ा विषय भी रहा है। यह प्रश्न इसलिए भी ज्यादा लाज़मी बन जाते है क्योंकि हम एक पश्चिमी उपनिवेशिक शिक्षा पद्यति का अनुसरण कर रहें है इसलिए यह सवाल कि वर्तमान शिक्षा में प्रचलित पश्चिमी अवधारणाओं से भारतीय परंपरा कहां तक अलग हैं? इस क्षेत्र में सुस्पष्ट सामग्री का अभाव भी सुविदित ही है। विभिन्न समाजों की परंपराओं का अध्ययन करने पर एक महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आता है कि सभी समाज विकास के अपने क्रम में सीखने-सिखाने की अपनी परंपराएं विकसित करते आये हैं। इतना ही नहीं इन परम्पराओं ने शिक्षार्थी को ज्ञान संप्रेषित करने के तरीके भी खोजे हैं। यह भी सर्वविदित है कि कोई भी परंपरा स्थिर और स्थायी नहीं होती है। समय के साथ उसमें बदलाव आते हैं। भारतीय परंपरा में सीखने-सिखाने का क्या स्वरूप रहा है और समय के साथ वे भी कैसे बदली हैं? शिक्षक की अवधारणा में किस तरह के बदलाव आए हैं और इन बदलावों के साथ साथ अवधारणा कैसे बदली हैं? और इन बदलावों में किस तरह के दवाब हावी रहे हैं? साथ ही इन सभी के केंद्र में ज्ञान, विद्या और कौशल के बीच स्पष्ट ज्ञानमीमांसीय अन्तर को समझने का प्रयास के साथ उपर्युक्त सभी मुद्दों का शिक्षणशास्त्र के संदर्भ में दस्तावेजी अध्ययन किया गया है, जिसे हम आगे के खंडों के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

2. सीखने और सिखाने की प्रक्रिया : इतिहास बोध

शिक्षणशास्त्र के रूप में भारतीय परंपरा के समावेश पर गहराई से विचार करने के लिए हम इस सवाल से आरंभ कर सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा में औपचारिक रूप से सीखने और सिखाने की प्रक्रिया कब शुरू हुई होगी? ताकि इसके गंभीर अर्थों और उद्देश्यों को समझा जा सके। दरअसल, भारतीय ज्ञान परंपरा में जो शिक्षा की अवधारणाएं हैं उनमें कुछ अवधारणाएं ऐसी थीं कि उनका जैसा समावेश वर्तमान शिक्षा दर्शन में होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ है। हमने पाया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा का बहुत स्पष्ट विभाजन नहीं है। इसलिए इस सवाल का उत्तर देना सरल नहीं है कि औपचारिक रूप से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया कब शुरू हुई होगी। यहाँ हम कह सकते हैं- मनुष्य जब से धरती पर आया, तब से ही सिखाना भी शुरू किया होगा। भारतीय ज्ञान परंपरा में विधिवत रूप से सिखाए जाने का स्वरूप स्वीकार किया गया जान पड़ता है। इस प्रकार के बहुत से उल्लेख मिलते है कि सबसे पहले 'माँ' ही सिखाती है। मनु ने भी इंगित किया है कि सबसे बड़ी गुरू भी मां ही है। माता जैसे ही संतान को जन्म देती है, सिखाने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। लेकिन सवाल यह होगा कि फिर इसे सीखने का औपचारिक स्वरूप माना जाए या नहीं, वेदों का अध्ययन करने और भारतीय ज्ञान परंपरा के मार्फत इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि औपचारिक रूप से सीखने और सिखाने की प्रक्रिया कब शुरू हुई होगी-कठिन भी है और दुरूह भी है। लेकिन जब हम शिक्षणशास्त्र को केंद्र में रखकर भारतीय ज्ञान परंपरा का विधिवत अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि कालान्तर में धर्मशास्त्र के मार्फत नियम और व्यवस्थाओं के जन्म के साथ-साथ, संस्कारों का विचार आया। संस्कारों का अमूर्तिकरण किया गया। इसलिए आवश्यक है कि यह समझा जाए कि संस्कार क्या हैं।

3. संस्कार क्या है ?

शिक्षणशास्त्र के रूप में संस्कार को एक हद तक हम औपचारिक शिक्षण प्रणाली कह सकते हैं। वेद साहित्य के चिंतन में 'संस्कार' की अवधारणा निहित हैं। संस्कार की अवधारणा औपचारिक रूप से सिखाने और शिक्षण की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। वेद चिंतन में औपचारिक शिक्षा में प्रवेश के लिए जो संस्कार निर्धारित है - वह है, 'उपनयन' संस्कार । 'उपनयन', गुरूकुल (शिक्षा ग्रहण करने का औपचारिक स्थान) में प्रवेश के पूर्व किया जाने वाला संस्कार है। वर्तमान शिक्षा पद्धति से जुड़ी सभी अवधारणाएं प्राचीन शिक्षा पद्धति से अलग हैं। दोनों के बीच अंतर का एक केंद्र बिन्दु 'संस्कार' भी हैं। वेद चिंतन में संस्कारों की बात पहले की गई है और शिक्षा उसके बाद आती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कार को हम एक 'व्यापक समझ' के रूप में स्थापित कर शिक्षा और उसकी प्रक्रिया को समझ सकते हैं। संस्कार को एक 'विश्वबोध' कहा जा सकता है। अर्थात संसार को देखने-समझने का हमारा दृष्टिकोण। यदि इसे दृष्टिकोण के मार्फत समझे तो हम पाते हैं कि भारतीय परंपरा का सम्पूर्ण विश्वबोध 'संस्कार' से संबद्ध है। भारतीय परंपरा में संस्कार ही बाद में एक विधिवत, प्रक्रियागत स्वरूप में दिखलाई पड़ता है। संसार को 'बीज' रूप में समझने के लिए संस्कार का तत्व भारतीय ज्ञान की दृष्टि का केंद्रीय तत्व है। यदि हम भारतीय परंपरा से इतर जितने भी विश्वबोध (पश्चिमी और मध्य एशिया आदि) हैं, उनको समझें तो पाते हैं कि उनके विश्वबोध के केंद्र में "पाप' है (अंग्रेजी में इसके लिए शब्द है 'Sin') और पाप के बोध से ही सृष्टि आरंभ होती है। इस संदर्भ में आदम और शैतान की कथा मिलती है और जो काफी प्रचलित भी है-"आदम को चेताया गया था कि वह बुद्धि या ज्ञान का फल नहीं चखे। शैतान आदम ललचाता है और वह उस फल को तोड़ लेता है तो फिर उसे शर्म आती है, पाप का बोध होता है और उनको स्वर्ग से निर्वासित कर दिया जाता है"। भारतीय ज्ञान परंपरा में सृष्टि का आरंभ सौंदर्य, आनन्द, उल्लास, सृजन और अपने-आपको व्यक्त करके अनन्त बनाने की कामना से होता है। इन दोनों विश्वबोध में एक बड़ा अंतर है। वेदों के ऋषि कहते हैं कि यह दुनिया ईश्वर की रची हुई कविता है-"यह संसार देव का काव्य है। शुचिता, आनन्द और सृजन के उल्लास से ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है, उसने स्वयं को अनन्त बनाने की कामना से सृष्टि को रचा है, एक को अनेक बनाने की कामना से रचा है। इस आज्ञा से मनुष्य का कर्तव्य बन

जाता है कि ईश्वर की रची कविता को पुनः ईश्वर तक पहुंचने के लायक बनाया जाए"। भारतीय चिंतन का यही विश्वबोध है। यह सब वेदों और उपनिषदों में कहा गया है। यही कारण हैं कि जितनी भी कलाएं, विद्याएं या निर्मिति या सृजना मनुष्य ने की हैं, वे सब उसी संस्कार की प्रक्रिया से जुड़कर रची गई हैं और उनके द्वारा वह (व्यक्ति) अपने-आपको संस्कारित करता है। अतः सारा जीवन ही यज्ञ है और उसको संपादित करते चले जाने में मनुष्य अपने-आपको संस्कारित करता है। यह बात वैदिक संहिताओं के बाद लिखे गए ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ में कही गई है। यहीं से (संस्कार) आदेश स्वरूप जब हमने औपचारिक व्यवस्थाएं कीं तो उसमें सोलह संस्कार रखे गए। इन संस्कारों का वर्गीकरण मनुष्य के उद्धविकास के क्रम में किया गया है। यथा -मां के गर्भ में शिशु के अंश से आरंभ होकर है, जीवन के अंत तक संस्कारों के साथ चलता जाता है। जन्म से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण हो जाना चाहिए। इसके बाद विवाह भी एक संस्कार है। विवाह जो केवल स्त्री -पुरुष का संबंध मात्र नहीं है या केवल दो लोगों के बीच में प्रेम मात्र नहीं है। वह भी संस्कारित करने की प्रक्रिया का एक अंग है, क्योंकि उससे हम अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, अपने-आपको पूर्ण बनाते हैं। पूरी सृष्टिचक्र के अनुरूप मनुष्य के जीवन चक्र और उसके अनुसार संस्कारों के चक्र द्वारा हम अपने-आपको लगातार परिपूर्ण बनाते हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली भी उससे जुड़कर अपने-आपको पूरा बनाने की, अपनी समग्रता को समझने की, स्वयं को जानने की प्रक्रिया का एक अंग बन जाती है। भारतीय परंपरा की शिक्षा का आधार या प्रयोजन 'संस्कार' है। जैसा कि हमने पहले कहा भी की संस्कार का लक्ष्य मनुष्य को संस्कारित करना, मनुष्य के व्यक्तित्व को संस्कारित करना है। जैसा की हमने ऊपर भी बताया कि संस्कार की प्रक्रिया जन्म के पहले ही आरंभ हो जाती है। उदाहरण के लिए मां के गर्भ में आने से पहले ही उसकी व्यवस्थाएं आरंभ कर दी जाएं। इसलिए देखा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में गर्भाधान संस्कार है। इतना ही नहीं पैदा होने के बाद किए जाने वाले संस्कार हैं, इसी तरह थोडा बड़ा होने पर उपनयन संस्कार भी है, विवाह का संस्कार है, और जैसा पहले भी इंगित किया कि यह एक 'नियोजन' भी है। वेदिक वाङ्ग्मय में सम्पूर्ण जीवन चक्र को 16 संस्कारों के एक विधिवत चक्र के रूप में रखकर देखा गया है। भारतीय परंपरा में संस्कारों की संख्या के विषय में विभिन्न मत हैं किन्तु सर्वस्वीकृत सोलह संस्कार हैं। जैसे–गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रशान, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, समावर्तन, विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संयास, अन्त्येष्टि संस्कार। इन संस्कारों में जैसा की उपर्युक्त वर्णन से विदित है कि 'उपनयन' शिक्षा आरंभ से संबद्ध है। इसी प्रकार शिक्षा कर्म पूर्ण होने पर होने वाला संस्कार 'समावर्तन' कहलाया है। 'समावर्तन' उपनिषदों में से अंतर्दृष्टि मिलती है वह बताती है कि गुरुकुल से, आश्रम से जब विद्या का संस्कार पूरा हो जाता था तो समावर्तन संस्कार होता था। आधुनिक संदर्भ में इसे 'कोन्वोकेशन'(दीक्षांत) कहते हैं। भारतीय परंपरा में दीक्षांत (समाप्त) का अर्थ नहीं है – समावर्तन (आवृत्ति) का अर्थ है। यह संस्कार समावर्तन का है। समावर्तन का अर्थ था - विद्या पूरी होने पर विदाई का संस्कार। समावर्तन संस्कार में आचार्य से विदा लेने से पूर्व स्नान का विधान किया गया है, जिसे – 'स्नातक' तक कहा गया है। यह शब्द आधुनिक समय में भी प्रयुक्त होता है लेकिन वैसे नहीं जैसा वहाँ पर हुआ है। स्नातक होने पर (स्नान कर लेने पर) उसका समावर्तन होता था। समावर्तन यानी, वह विद्या लेकर फिर से अपने संसार में लौटकर जाना है।

4. विद्या या कला क्या है ?

वेद साहित्य दरअसल..मंत्रों का साहित्य है, यह साहित्य वाचिक परंपरा से जुड़ा हुआ है। इसीलिए इसे श्रुति भी कहते हैं। श्रुति का विचार कहने और सुनने से संबद्ध है। वर्तमान शिक्षा में लिखने-पढ़ने का विचार निहित है जबकि वहाँ लिखने-पढ़ने का प्रश्न नहीं है। वहां कहना और सुनना है, श्रुति है। कहना-सुनना से अभिप्रेत है... जो कुछ ज्ञान... जो अनुभव से.... आपसी व्यवहार से....मिलने-झूलने से प्राप्त हुआ है... उसको कहना और उसको सुनना। वह एक मंत्र या मंत्रात्मक वांङ्मय भी हो सकता है जिसे सुरक्षित रखने और याद रखने के लिए अपने शिष्यों को बताया जाता है। यही 'वेद' हैं। अब सवाल यह था कि वेदों (मंत्रो) का अध्ययन कैसे किया जाए? अध्ययन के विषय और तौर-तरीके क्या-क्या हो सकते हैं? तो स्वीकार किया गया कि एक तो वेद हैं जिनका अध्ययन किया जाएगा और अध्ययन के लिए सभी जरूरी चीजें भी चाहिए। इस प्रकार मनुष्य ने अपने अनुभव से, अंतर्ज्ञान से जो कुछ हासिल किया है, वह मंत्र के रूप में स्थापित हुआ। उसे समझने के लिए कुछ विषय होने चाहिएं, विचार होने चाहिएं; उन्हें वेदांग (विधाएं) कहा गया। इस प्रकार 6 वेदांग बने- शिक्षा, तंत्र, निरूक्त ज्योतिष, छंद और व्याकरण।

- **शिक्षा** : यह उच्चारण की शिक्षा है। आधुनिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में फोनेटिक्स और फोनोलोजी या स्वर विज्ञान कहा जाता हैं। भारतीय परंपरा में 'शिक्षा' का शाब्दिक आशय मुख्य रूप से भाषा को बोलना, सही उपयोग, सही उच्चारण करना माना गया। भारतीय परंपरा के साहित्य में 'एजुकेशन' के लिए शिक्षा शब्द पूर्णतः नहीं है। शिक्षा का एक अर्थ सिखाना भी होता है तो भाषा को सिखाना उसका एक अर्थ लिया गया है। 6 वेदांगों, वेदों को समझने के लिए जो 6 विषय माने गए, उसमें सबसे पहला यही है कि कैसे सही बोलेंगे और इसे ही शिक्षा कहा गया।
- **कल्प**: कल्प कर्मकांड, धर्म का आचरण और व्यवहार की प्रक्रिया है।
- **निरूक्त** : निरूक्त को आधुनिक समय में 'एटीमोंलॉजी' कहा जाता हैं । निरूक्त अंतर्गत शब्द कैसे बने, उनका इस्तेमाल किस तरह से किया जा रहा हैं, पूर्व में किस अर्थ में उनका प्रयोग हुआ है, उसके पीछे मूल क्रिया क्या है, धातु क्या है, प्रत्यय क्या है आदि।
- **ज्योतिष** : ज्योतिष में गणित और समय का विचार है।
- **छंद** : छंद में कविता की कृति, लय, यति और उससे छंद कैसे बनते हैं, यह बताया जाता है।
- **व्याकरण**: व्याकरण में भाषा की शुद्धि का विचार और शुद्ध भाषा बोलने के नियम होते हैं।

शिक्षा, तंत्र, निरूक्त, ज्योतिष, छंद और व्याकरण। यह 6 वेदांग हैं। इनको एक तरह हमारी पाठ्यचर्या में समाहित किया गया। हमने संस्कारों के द्वारा जैसे ही एक औपचारिक प्रणाली विकसित की तो हम उसमें क्या पढ़ाएंगे यानी जो ज्ञान की धरोहर है, उसको समझने के लिए इन 6 विषयों को पढ़ाए जाने का विचार किया गया और उनके पढ़ाने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार चार वेद, 6 वेदांग और उसके साथ न्याय, मीमांसा, इतिहास, पुराण जोड़ देते हैं तो कुल 14 विद्याएं मानी गई हैं। ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि आरंभ में यह तीन विद्याएं थीं- आन्विक्षिकी, प्रयोग अथवा त्रयी और वार्ता।

- **आन्विक्षिकी** को एक तरह से लॉजिक या तर्कशास्त्रा कह सकते हैं। यह जीवन का तर्क है। सही तर्क के अनुसार जीवन बिताना आन्विक्षिकी है।
- **प्रयोग** अथवा त्रयी तीन वेद हैं।
- **वार्ता** कहते हैं कृषि और पशुपालन को।

ये तीन विद्याएं आरंभ में रही हैं। उसके बाद उसमें चैथी दण्ड नीति या गवर्नेंस जोड़ी गई। सामंती समाज में कुछ प्रशासन के सिद्धांत होने चाहिएं इसलिए उसमें यह चौथा विषय दण्ड नीति जोड़ा गया। यह चार विद्याएं बहुत पहले थीं। इनमें फिर 6 वेदांग और 4 विषय जोड़कर कुल 14 विद्याएं प्राचीन काल में आईं। इस तरह हमने संस्कार का विचार पृष्ठभूमि में रखते हुए शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था की। उसके बाद इनकी संख्या बढ़ती गई। आगे चलकर 32 विद्याओं पर शुक्रनीति में विचार हुआ है। यह अति प्राचीन है, हालांकि पश्चिमी प्राचीनता के संदर्भ में पश्चिमी मत अलग है। लेकिन हमारे पास प्रमाण हैं, इसलिए हम इसे इतना पुराना मानते हैं। उस समय हमारे पास एक संस्कृति है, हमारे पास विचार हैं, संस्कार का विचार है और यह विचार है कि उस संस्कार से शिक्षा जुड़ी होनी चाहिए। उन संस्कारों के अनुसार हम अपनी शिक्षा प्रणाली को किस प्रकार नियोजित करते हैं । इस प्रकार से हमारी एक औपचारिक शिक्षा प्रणाली आरंभ हो सकती है।

5. ज्ञान क्या है और यह कला या विद्या से कैसे अलग है ?

एक प्रश्न तो यह है कि ज्ञान क्या है ? और इससे संबद्ध दूसरा प्रश्न है कि ज्ञान और विद्या एक-दूसरे से किस तरह से अलग हैं? जब हम इन प्रश्नों पर काम करते हैं तो कई प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। इनमे से पहली है - पारिभाषिक शब्दों की समस्या। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें शब्दों के इस्तेमाल पर चिंतन करना होता है। जैसे - शब्द का अनुवाद क्या कर रहे हैं, शब्द का ऐतिहासिक और वर्तमान में प्रयोग किस रूप में हो रहा है? साथ ही यह शब्द किस संदर्भ में लिखे, बोले या पढे जा रहे हैं? किस शास्त्र में किस-किस संदर्भ में आए हैं? मोटे तौर पर हमारे यहां ज्ञान को जिस तरह बताया गया है उसके आधार पर ज्ञान को हम विद्या से अलग भी कर भी सकते हैं। मुक्ति के लिए, जितनी और जो समझ है, जो मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाती है- भारतीय परंपरा में वही 'ज्ञान' है । जबकि जितनी जानकारियां या सूचनाएँ, जितने हुनर या कौशल और जितनी कलाएं हैं, उसको विद्या या शिल्प भी कहा गया है। ऐतरेय महिदास में उसको शिल्प की संज्ञा दी गई है। भारतीय परंपरा में इसे विज्ञान भी कहा गया, परंतु वर्तमान शब्द 'साइंस' के अर्थ में वहां यह विज्ञान नहीं है, उससे अलग है। भारतीय चिंतन परंपरा में ज्ञान और विज्ञान, विद्या और अविद्या, ज्ञान और कला शब्दों का उपयोग होता आया है। हम ऐसा कह सकते हैं कि मनुष्य की मुक्ति का उपाय जिससे बन सके, ऐसा बोध या ऐसी समझ ज्ञान है और उसके भौतिक निर्वाह के लिए जितनी भी जानकारियां, हुनर, कलाएं आदि होती हैं, वे सब विद्याएं हैं। परंतु यह भी समझना जरूरी है कि भारतीय परंपरा में इनका विभाजन बहुत स्पष्ट नहीं भी दिखता है। इसके लिए अलग से खांचे नहीं बनाएँ गए हैं।

दूसरी समस्या यहाँ इनके अंतर को समझने की आती है - वह है, इन शब्दों के विलोम के प्रयोग से और इन्हीं से हम इस समस्या को हल भी कर सकते हैं। क्योंकि इन शब्दों में कहीं 'विद्या या अविद्या' के रूप में भी हुआ है और 'ज्ञान-अज्ञान' रूप में भी हुआ है। भारतीय परंपरा में वह (वेद) यह भी कहते हैं कि एक के बगैर दूसरा संभव नहीं हो सकता है। जैसे अविद्या के बिना विद्या और अज्ञान के बिना ज्ञान का बोध नहीं हो सकता ठीक वैसे ही दोनों आवश्यक है - ज्ञान भी और विद्या भी। क्या हम केवल ज्ञान के द्वारा संतुष्ट हो सकते हैं, क्या यह संभव है ? जीवन का निर्वाह कराने वाली विद्याएं, बौद्धिक संसाधनों से संबद्ध सभी कलाएं, हुनर समग्रता नहीं ला सकते। अतः बाकी समाज की मुक्ति का प्रश्न और बोध का प्रश्न भी इस समस्या में साथ-साथ चलता है। इसलिए रोजमर्रा की दुनिया के अलावा मनुष्य अपनी परिपूर्णता जिसमें हासिल करें, ऐसा बोध जिन-जिन चीजों से हो सकता है या जिस विमर्श से हो सकता है वह ज्ञान है। हम कह सकते हैं कि इसके अलावा जितने बोध हो सकते हैं, वे सब विद्याएं हैं और इसमें जितने हुनर हैं, शिल्प हैं, कलाएं हैं वे सब आ जाती हैं। हालांकि यह एक जटिल सवाल है क्योंकि इसी रूप में हम भेद करते हैं और कई बार इनको समानार्थक रूप में भी देखा गया है।

इसी संदर्भ में यदि हम ईशोपनिषद का अवलोकन करें तो पाते हैं कि ईशोपनिषद में विद्या-अविद्या शब्दों का प्रयोग बारंबार हुआ है। लेकिन जैसा अंतर ज्ञान और अज्ञान में है, वैसा नहीं है। लेकिन ज्ञान और अज्ञान में आपस में एक बड़ा अंतर है। यहाँ विद्या और अविद्या उसी अर्थ में हैं, जिस अर्थ में ज्ञान हैं। ज्ञान के समानान्तर जितने भी बोध हैं - वह विद्याएं हैं। इसलिए बोध को वहां उन्होंने विद्या कहा है। अतः अमृतत्व की ओर ले जाने वाले बोध

को वहां उन्होंने विद्या कहा है। ईशोपनिषद के अनुसार दोनों (विद्या -अविद्या) का परिणाम, प्रयोजन और फल अलग है। केवल विद्या में रामा हुआ व्यक्ति भी अंधेरे में डूबता है और जो व्यक्ति केवल अविद्या में रमा रह जाता है वह भी अंधेरे में खो जाता है। एक-दूसरे के बिना बोध के संपूर्णता प्राप्त नहीं होती। इसे का बोध होने को ईशोपनिषद में ज्ञान या विद्या कहा है। वेदांत में फिर से अज्ञान और अविद्या प्रायः पर्याय के रूप में आते हैं। वेदांत की पूरी परंपरा में अज्ञान और माया आता है, माया भी उसको कहा गया है।

6. विद्या क्या है और यह कौशल से कैसे अलग है?

हम देखते हैं कि विद्या को कौशल से जुड़ी हुई चीज की तरह भी देखा जाता है, जैसे धनुर्विद्या। जैसा की हमने ईशोपनिषद के संदर्भ में समझा था उसमें विद्या और अविद्या वर्णित है। दूसरे शास्त्रों में ज्ञान और विद्या का उल्लेख मिलता है। ईशोपनिषद में मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने वाला जो बोध है, वह ज्ञान है और बाकी जितने हुनर हैं, उनको भी विद्या कहा गया है। ईशोपनिषद के अलावा कुछ शास्त्रों में जहां विद्या वर्णित है वहां विद्या का अर्थ भिन्न हो जाता है। जैसे चार वेद- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद हैं और प्रत्येक वेद का एक-एक उपवेद भी है। उदाहरण के लिए अर्थवेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्व वेद। हमारी शिक्षा प्रणाली में इन चार वेदों के साथ-साथ प्रत्येक के उपवेदों को भी शामिल किया गया है। इसी तरह चार वेदों को समझने के लिए छह वेदांग हैं- शिक्षा, कल्प, निरूक्त, ज्योतिष, छंद और व्याकरण। इतना ही नहीं इन चारों उपवेदों में जितनी भी कलाएं वर्णित हैं वह भी हमारी शिक्षा प्रणाली का हिस्सा बन गया। जैसा कि हमने पहले भी इंगित किया है कि शुक्रनीति में 32 कलाएं हैं। उसमें विद्या के साथ-साथ शास्त्र का भी उल्लेख मिलता है। इन सबको भी वहाँ विद्या ही कहा गया है। वहां विद्या शब्द का फिर पारिभाषिक अर्थ अलग हो जाता है। सभी कौशल, हुनर हैं और वर्तमान शिक्षा के विषयों दृष्टि से उनको विद्या कहा जा सकता है।

7. तो फिर विशुद्ध ज्ञान क्या है ?

अब एक सवाल से आरंभ किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति को ज्ञान हुआ और उसको ये समझ में आना की उसको ज्ञान हुआ या ये कब कहा जा सकता है कि ज्ञान प्राप्त हुआ? तो हम इस सवाल के उत्तर को पुनः बोध के माध्यम से समझ सकते हैं। दरअसल अपने भीतर के बोध से ही जाना जाएगा कि हमें ज्ञान हुआ है या नहीं हुआ। इसे हम छांदोग्य उपनिषद में वर्णित उद्दालक और स्वेतकेतु के संवाद के मार्फत यह समझ सकते हैं ? उद्दालक उपनिषदों के बहुत बड़े विचारक रहें हैं। इस संवाद में वह गुरुकुल से शिक्षा गृहण करके आए अपने पुत्र स्वेतकेतु से पूछते हैं कि 'क्या तुमने उस तत्व को भी जाना है जिसके जानने से सब कुछ जान लिया जाता है'? स्वेतकेतु इससे इनकार करता है और कहता है कि 'हमारे गुरुओं ने ऐसा कुछ नहीं बताया लेकिन आप बताओं । तब उद्दालक दृष्टांत के माध्यम से स्वेतकेतु में बोध उत्पन्न करते है और गूलर के फल और उसके बीज से पेड़ कि उत्पत्ति के दृष्टांत के माध्यम से बताते हैं कि बीज में इतना बड़ा पेड़ समाया हुआ है, अगर तुम इसे जान लोगे तो इस बीज को, फल को और सारे पेड़ को जान सकोगे। इसी तरह कोई एक तत्व है जो कि इस सब में पिरोया हुआ है..... इसे समझ सकोगे तो इस पूरी सृष्टि को समझ सकोगे। जब तक स्वानुभूति न हो जाए तब तक यह नहीं माना जाएगा कि बोध हुआ। अन्त में स्वेतकेतु कहता है कि हां, मुझे कुछ अनुभव हुआ, बोध हुआ। यही स्वानुभूति है। स्वानुभूति एक प्रमाण है। सारे वेदांग की परंपरा में, कविता में भी अनुभव को ही प्रमाण माना गया है। दृष्टांत के माध्यम से बोध उत्पन्न करना भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण शिक्षणशास्त्र रहा है। दरअसल, ज्ञान हुआ, कितना हुआ इसका कोई एक पैमाना नहीं हो सकता। इसे ही समझने के लिए भारतीय परंपरा में ज्ञान की प्रणालियां विकसित की गईं जिनसे हम एक हद तक पहचान सकते हैं कि हां, बोध हो रहा है। इसके लिए भी उपनिषदों में शिक्षण के बहुत सारे सिद्धांत अथवा विधियाँ विकसित कि गई थी। इसमें एक विधि है प्रश्न की ....प्रश्न में भी कई परते हैं जैसे सबसे पहले प्रश्न आता है- दूसरा है अवान्तर प्रश्न, तीसरा है अनैति प्रश्न है। इन सब के अनुप्रश्न भी होते है। लेकिन अनैति के बाद प्रश्न नहीं होता। इनका सबसे अच्छा उदाहरण हमें उपनिषद में वर्णित गार्गी और याज्ञवलक्य का शास्त्रार्थ से मिलता है। प्रश्न के बाद जो एक और विधि है, वह है, वह व्याख्या है, इसमें भी फिर अनुव्याख्या है। दरअसल, सिद्धांत को समझाना व्याख्या है जबकि व्याख्या पर पुनः स्पष्टीकरण अनुव्याख्या है। इसके अतिरिक्त विधियों में आख्यायिका -कथा या आख्यान या किस्से-कहानी है। इतना ही नहीं ऊध्व प्रवचन यानि जिज्ञासा भी हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में यह सब बोध के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की एक शिक्षण विधि बनाई गई है। ये मोटी-मोटी चीजें हैं। इनको लागू करने से बोध कि तरफ बढ़ा जाता है। यदि ध्यान से देखे तो हम पाते हैं कि जिसे हम ज्ञान कह रहे हैं, उसे प्राप्त करने का मार्ग थोड़ा दुर्गम है। यह इसलिए क्योकि कि हम जिन्हें विद्याएं कहते हैं उन्हें हासिल करने का मार्ग शायद इतना दुर्गम नहीं है। इसके लिए बुद्ध का उदाहरण है। बुद्ध भी बहुत बड़े शिक्षक रहे हैं। बुद्ध के बारे में भी सुनने को मिलता है कि वह यह जानने के लिए उनको ज्ञान प्राप्त हुआ या नहीं..... ये जानने वह बौद्ध गया से विचरण करते हुए सारनाथ अपने शिष्यों को ढूंढते हुए पहुंचे...जिन लोगों ने उनके साथ साधना की थी और फिर छोड़ गए थे कि अब तुम्हारा रास्ता अलग है। फिर उन्हीं के पास वे आते हैं कि उन लोगों को बताकर मैं परखूंगा कि जो बोध मुझे हुआ है यह कितना सही है। अपने ज्ञान के प्रमाणीकरण के लिए भी गुरु को शिष्य की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी की शिष्यों को एक गुरु की आवश्यकता होती है।

8. भारतीय परंपरा में अध्यापक

शिक्षणशास्त्र की पूरी प्रक्रिया में अध्यापक और अधिगमार्थी केंद्रीय महत्व रखते हैं। भारतीय परंपरा में अध्यापक का स्थान भी विशिष्ट रहा है। इस सम्पूर्ण परंपरा में अध्यापक के लिए चार शब्द प्राय के रूप में इस्तेमाल होते है - 'आचार्य', 'उपाध्याय', शिक्षक तथा 'गुरु'। लेकिन ऐतिहासिक क्रम में अध्यापक की अवधारणा में भी परिवर्तन निहित रहा है। भारतीय परंपरा में अध्यापक के लिए 'आचार्य' शब्द का उपयोग सबसे पहले मिलता है और उसके कुछ बाद में 'उपाध्याय' शब्द का उल्लेख मिलता है। 'आचार्य' शब्द वेदों में है और वेदों में 'शिष्य' शब्द नहीं मिलता है। 'शिष्य' के लिए वेदों में 'ब्रह्मचारी' या 'आचारी' शब्द आता है। ब्रह्मचारी अर्थात ब्रह्मज्ञानी - यानी ज्ञान की चर्या करने वाला (ब्रह्मचारी शब्द का आधुनिक संदर्भ - ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला है, यह अर्थ इसमे निहित नहीं है)। वेदों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो बालक या व्यक्ति किसी एक गुरु के पास रहकर चर्या तथा आचरण कर रहा है, उसे ब्रह्मचारी कहा गया हैं। वेदों में आचार्य और ब्रह्मचारी के बीच के संबंध की चर्चा स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। इस संबंध में अथर्वेद में उल्लेख है कि आचार्य ब्रह्मचारी को नया जन्म देता है। प्रथम जन्मदाता माँ है और द्वितीय जन्मदाता आचार्य है। इसलिए परंपरा में ब्रह्मचारी के 'द्विज' का उल्लेख भी मिलता है। ब्रह्मचारी का उपनयन के बाद उसका दूसरा जन्म होता है। जब ब्रह्मचारी आचार्य से दीक्षित हो जाता है तब शिक्षा उसको नया जन्म देती है। तो जिन-जिन का उपनयन होता है, जिनका शिक्षा के लिए प्रवर्तन होता है वे सब द्विज हैं। इस प्रकार 'आचार्य' सबसे पुराना शब्द हुआ, फिर 'उपाध्याय' शब्द का उल्लेख मिलता है और थोड़ा और बाद में 'गुरु' शब्द का भी प्रयोग भी देखने को मिलता है। शिक्षित करने की पूरी प्रक्रिया में आचार्य' की गरिमा जुड़ी हुई है इसलिए ही 'गुरु' शब्द का प्रयोग हुआ होगा। मूलतः गुरु का अर्थ अपने से जो भी बड़ा हो, वह गुरु हैं। यथा इसी अर्थ में पिता और माता भी गुरु ही हैं। चूंकि शिक्षक बड़ा है ही इसलिए उसे गुरु कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है। यदि हम औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा देने वाले व्यक्ति के लिए देखे तो उसके लिए गुरु शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु शब्द एक लक्षणा के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस पूरी परंपरा में शिक्षक शब्द बहुत बाद में प्रयुक्त हुआ दिखाई देता है। जैसा कि हमने पहले भी चर्चा कि है भारतीय परंपरा में 'शिक्षा' का संदर्भ संस्कार- ज्ञान, विद्या, स्वाध्याय है। आधुनिक समय में शिक्षा से अभिप्राय ''एजुकेशन' (यह एक औपनिवेशिक विचार से अभिप्रेत है) से लिया जाता है। इसका अर्थ उतना अभीष्ट नहीं हैं जितना ज्ञान, विद्या, स्वाध्याय का हमारी परंपरा में है। स्वाध्याय से ही 'अध्यापक' शब्द आया है। जितना भी उसका ज्ञान है उसकी रोज आवृत्ति करना, अपने भीतर उसको निर्मित करते रहना को कहा गया है- स्वाध्याय । इसमें कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो एक ही धातु से बने हुए हैं जैसे - अध्यापन, स्वाध्याय, अध्येता, अधिति आदि। यह अध्ययन की प्रक्रिया से जुड़े हुए शब्द हैं। जो पढ़ने-पढ़ाने और शिक्षणशास्त्र से जुड़े हुए हैं। विद्यार्जन के बाद गृहस्थ आश्रम का प्रवेश माना गया है। गृहस्थ आश्रम में पाँच यज्ञ है - अध्यापन यज्ञ (ब्रह्म यज्ञ), अतिथि यज्ञ, पितृयज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ या बलि। हम देख सकते हैं कि अध्यापन या ब्रह्म यज्ञ को जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। जैसा कि हमने पहले भी चर्चा की थी कि भारतीय परंपरा में जीवन की परिकल्पना को यज्ञ के रूप में रखा गया है। वेदों और उपनिषदों की सम्पूर्ण परंपरा में यज्ञ का एक बड़ा उद्देश्य माना गया है- इस प्रकार देखें तो इसका उद्देश्य हुआ कि हम स्वयं को एक बड़े उद्देश्य के लिए विसर्जित करें, अपने से किसी बड़े के लिए, उद्देश्य के लिए, अनन्त से जुड़ने के लिए, बोध के लिए, ब्रह्म के लिए, समाधि के लिए- जिस तरफ बुद्ध उन्मुख हुए। हमने पहले भी इंगित किया था सार तत्व को जानने के लिए सभी मार्गों से होकर जाना होगा। इसी क्रम में अध्यापन पहला यज्ञ है, इसको करके ही हम अपने-आपको परिपूर्ण करते हैं। यह परिपूर्णता तब होगी जब शिष्य मिलेगा यथा - योग्य शिष्य ढूंढ़ना होगा। हमारे यहां यह अवधारणा है कि शिष्य ही गुरु को ढूंढ़ता हुआ आएगा और उससे ज्ञान प्राप्त करेगा। जिस प्रकार बुद्ध शिष्यों को ढूंढते हैं – परिपूर्णता के लिए।

9. उपसंहार

हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा में भारतीय शिक्षणशास्त्र के संदर्भ में औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा का स्पष्ट विभाजन नहीं हैं बल्कि एक विस्तृत और सघन व्यवस्था है। इसमें 'संस्कार' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह औपचारिक शिक्षण प्रणाली का आधार माना गया है। संस्कारों के माध्यम से शिक्षा की प्रक्रिया समझी जा सकती है, और ये व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास का एक अभिन्न हिस्सा हैं। भारतीय परंपरा में 'विद्या' और 'ज्ञान' के बीच स्पष्ट भेद है। ज्ञान वह बोध है जो मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाता है, जबकि विद्या कौशल और जानकारियों से संबंधित है। विद्या को विभिन्न कौशलों और शिल्पों के संदर्भ में देखा गया है। भारतीय दृष्टिकोण में, ज्ञान और विद्या एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। ज्ञान को एक अभिन्न और महत्वपूर्ण जबकि आधुनिक शिक्षा के अर्थ से इतर अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी माना गया है। भारतीय परंपरा में अध्यापक का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न शब्दों जैसे 'आचार्य', 'उपाध्याय', 'शिक्षक' और 'गुरु' का उपयोग अध्यापक के संदर्भ में किया गया है। जबकि 'शिष्य' के लिए 'ब्रह्मचारी' या 'आचारी' शब्दों का प्रयोग होता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा में सीखने और सिखाने की प्रक्रिया एक समृद्ध और विस्तृत इतिहास रखती है, जिसमें संस्कार, विद्या, ज्ञान और अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह सभी तत्व मिलकर एक संपूर्ण शैक्षिक प्रणाली का निर्माण करते हैं, जो व्यक्ति के विकास और समाज के उत्थान में सहायक होती है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Rigveda. (2009). Sadhana Prakashan, New Delhi.

Rigveda Sahita. (n.d.). https://vedpuran.net/wp-content/uploads/2011/10/rigved.pdf (Accessed 14 October 2024, 20:17:44)

Veda Parijat. (2010). NCERT, New Delhi. https://ncert.nic.in/del/pdf/Ved%20Parijat.pdf (Accessed 29 September 2024, 23:27:43)

Upanishads. (n.d.). https://upanishads.org.in/ (Accessed 15 September 2024, 12:24:23)

Vyasa, Rekha. (2024). Samaveda. Sanskrit Sahitya Prakashan, New Delhi. https://www.rvskvv.net/images/Sam-Veda_17.04.2020.pdf (Accessed 25 October 2024, 22:25:53)

All for Veda. (n.d.). https://xn--j2b3a4c.com/ (Accessed 15 September 2024, 12:24:23)

Tripathi, R. (2021). Veda in Theory and Practice. D.K. Printworld (P) Ltd.

Aravind, S. (2001). The Upanishads, Part II, Kena and Other Upanishads (p. 102).